भगतसिंह ने कहा

''क्रान्ति करना बहुत कठिन काम है। यह किसी एक आदमी के ताकत के वश की बात नहीं है और न ही यह किसी निश्चित तारीख को आ सकता है। यह तो विशेष सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से पैदा होती है और एक संगठित पार्टी को ऐसे अवसर को सँभालना होता है और जनता को इसके लिए तैयार करना होता है। क्रान्ति के दुस्साध्य कार्य के लिए सभी शक्तियों को संगठित करना होता है। इस सबके लिए क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं को अनेक कुर्बानियाँ देनी होती हैं।''

–भगतसिंह

('नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम पत्र' से)

'आह्वान' के वर्ष 11 अंक 3 (जन.-मार्च, 2003) में गौरव के लेख 'नकली राष्ट्रवादियों की असली जन्मकुण्डली' मे छिपी वास्तविकताओं को सामने लाने का जोखिम भरा कार्य हुआ है। सागर तिवारी के सवाल बेचैन ही नहीं करते बल्कि आक्रोश पैदा करते हैं। अभिनव की रिपोर्ट नारीवाद का दम्भ भरने वाले प्रगतिशीलों को सोचने पर अवश्य ही विवश करेगी। अर्चना की जीवनशैली का साहस सामाजिक दबाव में कुचला गया। 'युवा-चिन्तन' स्तम्भ में अभिनव सिन्हा का लेख 'आज के भारत में अलगाव का सवाल' पत्रिका का सिरमौर लेख माना जा सकता है। पत्रिका के दायित्व का भी परिचायक है यह लेख। इस लेख के लिए लेखक, लोग प्रकाशन के लिये सम्पादक को धन्यवाद देता हूँ। मार्क्स की 'सेल्फ-एलियनेशन' की 'फ़िलॉसफ़ी' समझने, विचारने जैसी है। अभिनव सिन्हा ने सही कहा है कि आज की पीढ़ी में क्लासिक पुस्तकें पढ़ने की परम्परा समाप्त प्राय हो चुकी है। ऐसे में इस आलेख से प्रेरणा मिल सकती है। सचमुच पत्रिका इस आलेख से अन्य पत्रिकाओं की तुलना में वैचारिक स्तर पर उच्च स्थान पा गई है। मैं अपनी तरफ से अधिक लोगों को इस लेख को पढ़ाने का प्रयास करूँगा।

-अरुण पाराशर 'बारना'
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

■ पाठक मंच

महोदय,

दिल्ली पुस्तक मेले में आपकी पत्रिका का एक अंक प्राप्त हुआ था। पढ़कर खुशी हुई कि शहीद भगतसिंह के सपनों को साकार करने के लिए जुझारू नौजवानों को संगठित करने का प्रयास आपके स्तर से किया जा रहा है। मुझे आपके अभियान से जुड़कर बहुत प्रसन्नता होगी।

पत्रिका के लिए एक गीत-रचना प्रेषित है :

ओ भूखे-नंगे इंसानो!

ओ भूखे नंगे इन्सानो, दुश्मन और दोस्त को पहचानों।
कुछ अपनी हालत को देखो कुछ हाल वतन के भी जानो।।
जब भूख सताती है तुमको हाथों को मिलता काम नहीं
यदि मिल भी जाये काम कहीं, मिलता है वाजिब दाम नहीं
तब पण्डित पेट नहीं भरता, मुल्ला आता है काम नहीं।
फिर क्यों मन्दिर के लिये लड़ो क्यों मस्जिद का फ़तवा मानो।
ओ भूखे नंगे इन्सानों
वे धर्म धुरन्धर ढोंगी हैं, पूँजी के हैं ये सच्चे प्यादे
जो धर्मराज दिखते तुमको, करते हैं मन्दिर के वादे
वे मन्दिर नहीं बनायेंगे, घर भले तुम्हारे ही ढहा दें।
उनकी करतूतों को देखो उनकी नीयत को पहचानो।
ओ भूखे नंगे इन्सानो।
वे मुँह में राम-राम जपते, हाथों में रखते एटमबम
बातें करते हैं बड़ी-बड़ी हिम्मत है लेकिन सबसे कम
ऐसे हैं वाग्वीर जिनके घुटनों में नहीं रहा है दम
उनको नंगा हो जाने दो उनके नेकर को मत थामो।
ओ भूखे नंगे इन्सानो।
तुम देखोगे उनके अन्दर है देशभक्ति का नाम नहीं
अमरीका बहुत सुहाता है मिलता उनको आराम वहीं
बुश बड़े देवता हैं उनके, कोई स्वदेशी राम नहीं
डालर दुलारता है उनकी यह सच है सच को सच मानो।
ओ भूखे नंगें इन्सानो।
अमरीका पर आफत आये सबसे पहले हम ठोकेंगे
ये ऐसे स्वामिभक्ति दास मालिक से पहले दौड़ेंगे
अमरीका माँगें खून अगर बोलेंगे पहले हम देंगे
वे जंगख़ोर बर्बादी का भी जश्न मनायेंगे मानो।
ओ भूखे नगें इन्सानो।
सरहद पर जंग लड़ी तुमने प्राणों की दी कुर्बानी है
अर्थी पर वोट बटोरे वे मर गया आँखें का पानी है
खा गये कमीशन कफ़नखोश कहते कँप कँपाती वाणी है
यूँ कब तक सहन करोगे तुम कुछ तो बोलो ऐ मर्दानो।
ओ भूखे नंगे इन्सानो।
धर्मोन्मादी आँधी हो या युद्धों की कोई बिसात
जीवन में सुबह नहीं लाती गहराती लम्बी स्याह रात
ओ मेहनतकश इन्सान उठो तुम तो उनके ही नहीं साथ
हर जोर जुल्म से टकराओ फिर इन्कलाब के स्वर तानो।
ओ भूखे नंगे इन्सानों, दुश्मन और दोस्त को पहचानो
कुछ अपनी हालत को देखो, कुछ हाल वतन के भी जानो।।

–अमरनाथ 'मधुर'
ग्रा. व पो.-परीक्षित गढ़ जिला-मेरठ (उ.प्र.)

(शेष पृ. 26 पर)

साथियो,

'आह्वान' का यह अंक, तीन अंकों के अन्तर के बाद प्रकाशित हो पा रहा है, जिसका हमें खेद है। इसके नियमित प्रकाशन के लिए हम एक बार फिर संकल्पबद्ध हैं, लेकिन इसके लिए हमें आप सभी के सक्रिय सहयोग की सख़्त जरूरत है।

'आह्वान कैम्पस टाइम्स' सारे देश में चल रहे वैकल्पिक मीडिया के प्रयासों की एक कड़ी है। हम सत्ता प्रतिष्ठानों, फण्डिंग एजेंसियों, पूँजीवादी घरानों, एवं चुनावी राजनीतिक दलों से किसी भी रूप में आर्थिक सहयोग लेना घोर अनर्थकारी मानते हैं। जनता की वैकल्पिक मीडिया सिर्फ जन संसाधनों के बूते खड़ा किया जाना चाहिए–हमारी यह दृढ़ मान्यता है। अतः हम अपने सभी पाठकों-शुभचिन्तकों -सहयोगियों से अपील करते हैं कि वे अपनी ओर से अधिकतम संभव आर्थिक सहयोग भेजकर परिवर्तन के इस हथियार को मजबूती प्रदान करें।

आह्वान का यह अंक बावन पृष्ठों का है। अगले अंक से यह नियमित रूप से अड़तालीस पृष्ठों का प्रकाशित होगा। बढ़े हुए पृष्ठों के चलते अब पत्रिका का मूल्य दस रुपये होगा। डाक से पत्रिका मँगाने वालों के लिए वार्षिक सदस्यता राशि (डाक व्यय सहित) पचास रुपये रखी गयी है।

हमें विश्वास है कि आपका सहयोग बना रहेगा।

–सम्पादक

बूते लोकप्रिय सरकार का तख्तापलट कर दिया और सत्तासीन होने के बाद कम्युनिस्टों, शियाओं, कुर्दों और अपने तमाम विरोधियों को क्रूर दमन का निशाना बनाया। इराक की कम्युनिस्ट पार्टी अरब देशों की सबसे शक्तिशाली कम्युनिस्ट पार्टियों में से एक थी। ख्रुश्चेव के नकली समाजवाद के प्रभाव में इसका नेतृत्व कतारों की जुझारू चेतना को कमजोर बनाने का काम कर ही रहा था कि सद्दाम का कहर बरपा हो गया। कुर्दों के दमन का इतिहास जाना-पहचाना है। शियाओं के भी एक हिस्से को दमन का सामना करना पड़ा।

खाड़ी युद्ध की परिस्थितियों को याद करें। वहाँ काफी जटिलताएँ थीं। सद्दाम हुसैन को खाड़ी युद्ध के एक विशेष दौर में अमेरिकी साम्राज्यवाद ने इस्तेमाल किया और वे इस्तेमाल हुए भी–अपनी आधिपत्यवादी महत्वाकांक्षाओं के चलते। सद्दाम हुसैन की स्थिति आम तौर पर तीसरी दुनिया के उन सभी देशों के बुर्जुआ शासक वर्ग पर लागू होती है जो उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद अपने-अपने देशों में सत्तारूढ़ हुए। अरब देशों के सत्ताधारियों के दोमुँहेपन एवं ऐतिहासिक विश्वासघात और उनकी सीमाओं को हाल में हुआ लीबिया के शासक मुहम्मद कजाफी का घुटनाटेकू रवैया भी उजागर करता है।

पूरे अरब में अब जिस नई क्रान्तिकारी लहर के बीज पक रहे हैं वह राष्ट्रवाद के झण्डे तले और बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में फलीभूत नहीं हो सकती। फलस्तीन और इराक की घटनाएँ यही दिखलाती हैं। अब यह लड़ाई नए सिरे से साम्राज्यवाद-विरोधी पूँजीवाद-विरोधी क्रान्ति के झण्डे के नीचे होगी। इस लड़ाई में व्यापक मेहनतकश जनता के साथ बुर्जुआ वर्ग का कोई हिस्सा सहयोगी बनने की क्षमता ऐतिहासिक तौर पर खो चुका है। सच पूछें तो अरब देशों के जनसंघर्षों की अभी यही समस्या है। वहां जनता के हरावल दस्ते की कोई नई पीढ़ी यदि है भी तो भ्रूणावस्था में है। बहरहाल, जनता संघर्षों के दौरान सीखती है और संघर्षों का दहनपात्र ही क्रान्तिकारी हरावलों को भी तपाकर मजबूत बनाता है। यही प्रक्रिया आज अरब देशों में चल रही है।

(पृष्ठ 2 का शेष)

पाठक मंच

इतिहास का सच

तुम्हारे हाथ इतिहास बनाते हैं या आदमी
यह बात उसकी समझ के बाहर है
जो सिर्फ अपने लिए जीवित होता है
समाज और मनुष्य की अवधारणा
जिसके लिए बेमानी होती है
यह सच है कि उसने जब भी उकेरने की
कोशिश की है
अपनी कविता में इतिहास को
हर बार यही पाया है उसने कि
इतिहास उसक विरुद्ध होता जा रहा है
फनः वह इतिहास को दुहराने की
गलती भी करना चाहता है
लेकिन इतिहास तो इतिहास
पूरा विश्व उसके खिलाफ जाने लगता है
लिहाजा वह इतिहास के बाहर
चला जाता है अन्ततः
उसके पूरे वजूद के साथ

–रामनिहाल गुंजन
नया शीतल टोला, आरा (बिहार)

आह्वान का जनवरी-मार्च, 2003 अंक पढ़ा। जिसमें बेचैन करते सवाल (एकदलीय छात्र के, आत्महत्या) को पढ़कर अत्यन्त दुख हुआ, और भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था एवं विश्व में तथाकथित रूप से सर्वोच्च कहे जाने जाने वाले लोकतांत्रिक देश का नग्न रूप प्रकट हुआ है। इसमें मुख्यतः एक दलित छात्र की हत्या नहीं एक ग़रीब छात्रा की हत्या हुई है क्योंकि अगर यही छात्र धनाढ्य परिवार का होता तो न तो उसे इतना अपमानित होना पड़ता और न ही वह आत्महत्या करता। ऐसे प्रकरण देश की आर्थिक वैषम्यता को चित्रित करते हैं। वर्तमान देश में व्याप्त कुलीनवादी संस्कृति, जातिवाद, सामाजिक आर्थिक विषमता एवं अमानवीय कृत्यों को रोकने के लिए आह्वान ने जो आवाज दी है, अति प्रशंसनीय है। देश में सामाजिक एवं आर्थिक समानता आने पर ही इस तरह के प्रकरण नहीं होंगे। और इसके लिए भगतसिंह की राह पर चलना ही पड़ेगा। मैं आह्वान के निरन्तर सफलता की कामना करता हूँ।

–बी.एल.वर्मा
जयपुर

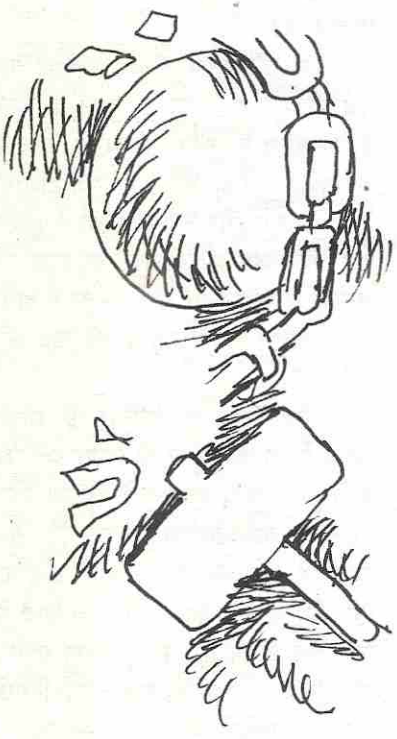

(पृष्ठ 28 का शेष)

प्रतिबद्ध अध्येता हमज़ा अलवी...

कट्टरपंथ, अमेरिका-पाक सैन्य सहयोग, पाकिस्तान की औरतों की स्थिति, साम्राज्यवाद, संस्कृति जैसे विषयों पर काफी काम किया। हमज़ा अलवी से असहमति, और गम्भीर असहमति के बहुतेरे मुद्दे मौजूद हो सकते हैं, लेकिन इस बात को वामपंथी बौद्धिक दायरों में निर्विवाद माना जाता है कि वे "मुक्त चिन्तक" नहीं थे। उनके सुपरिभाषित सामाजिक सरोकार और स्पष्ट प्रतिबद्धताएँ थीं, जिनको लेकर उन्होंने कभी कोई समझौता नहीं किया। आज फैशनपरस्त प्रगतिशीलता और अकर्मक विमर्शों के घटाटोप में ऐसे प्रतिबद्ध बुद्धिजीवी अब बहुत कम पाए जाते हैं। खास तौर पर इसलिए, अलवी का निधन वैज्ञानिक सामाजिक चिन्तन के लिए एक अपूरणीय क्षति है, इसमें कोई सन्देह नहीं।